

## बूढ़ी माँ का लाड़ला बेटा

ऋचा पाठक

बुद्धिनाथजी की कालजयी रचना 'एक बार और जाल फेंक रे मछेरे!' मैंने सुप्रसिद्ध लेखिका 'शिवानी जी' की कलम के माध्यम से जानी। उन्होंने 'झूला' शीर्षक से लिखी अपनी पुस्तक, 1979 संस्करण के अंतिम संस्मरण लेख में लिखा था जिसका शीर्षक भी 'बन्धन की चाह' था और अंत भी 'बन्धन की चाह' से हुआ था—चोर शायद आजकल मेरी 'सुरंगमा' की धरावाहिक किस्तों को पढ़ रहा था, क्योंकि उस साहित्यिक अभिरुचि के तस्कर न मेरा बटुआ छुआ भी नहीं। जी में आया, अपने हाथ में पड़ा वैसा ही यमज कंकण उसे दिखा कर पहले दिन के कवि सम्मेलन में सुनी, बनारस के कवि बुद्धिनाथजी की पक्तियाँ दुहरा दूँ—

एक बार और जाल फेंक रे मछेरे!  
जाने किस मछली में बन्धन की चाह हो।

समझ में नहीं आया कि शिवानीजी ने उस संस्मरण को अभिव्यक्त करने के लिए संस्मरण का सहारा लिया था। बहरहाल, इस संस्मरण ने कवि के प्रति कौतूहल पैदा कर दिया था। 23 जुलाई 2006 को गदरपुर से कवि श्री मनोज आर्य का फोन आया—दोपहर तीन बजे से राजकीय इंटर कॉलेज, गदरपुर, उत्तराखण्ड में बुद्धिनाथ मिश्रजी के सम्मान में गोष्ठी हो रही है। आप लोग आ सकें तो आ जाइये। मैंने अपने पति से बात की तो वे फ़ैक्ट्री से अवकाश लेकर आ गये। मैं सड़क पर ही उनका इंतजार कर रही थी। समय कम था। हम लोग फटाफट गाड़ी में बैठे और चल पड़े। गर्मी भयंकर थी, पर उद्देश्य के सामने गौण थी।

गदरपुर पहुँचने पर जब हमने सभा कक्ष में प्रवेश किया तो मेरे उत्साह पर ठंडे पानी के छींटे पड़ गये। बुद्धिनाथ जी सामने थे पर वे तो कहीं से भी मेरी कल्पना के कवि नहीं लग रहे थे, जिन्हें मैंने शिवानीजी के द्वारा जाना था। मैंने सोचा था, न सही धोती—कुर्ता पर कम से कम पाजामा—कुर्ता पहनने वाले तो होंगे ही। न सही विष्णु प्रभाकरजी जैसी गाँधी टोपी या पंतजी जैसा केश विन्यास, पर कुछ तो स्थापित कवियों जैसा होगा, स्थापित कवियों से मेरा सबका बस पाठ्य—पुस्तकों में पड़ा था।

कुछ भी तो कवियों जैसा नहीं था। पैन्ट, शर्ट, बैल्ट, जूते, चुस्त, दुरुस्त मिश्रजी तो कोई प्रशासनिक अधिकारी लग रहे थे। बाद में पता चला कि वे पेट्रोलियम मंत्रालय की बैठक में ओएनजीसी के वरिष्ठ अधिकारी के रूप में भाग लेने भीमताल जा रहे थे, इसीलिए सरकारी बाना में थे।

प्रणाम करके अपनी निराशा को सम्हालते हुए और उनके मुखरित हास्य को अधिकारियों की सहजवृत्ति स्वीकारते हुए स्थान लिया। पहला संवाद मिश्रजी ने ही किया—'भोजन किया आप लोगों ने? मेरे अचेतन मस्तिष्क ने सदमे के कारण जिह्वा को कोई आदेश नहीं दिया। जवाब मेरे पति ने 'हाँ जी' के साथ दिया।

लेकिन उनके स्वर के माधुर्य ने मुझे जरूर चौंकाया। जब उन्होंने बोलना शुरू किया तो मेरे मन की उमस पर ही नहीं, वहाँ के वातावरण पर भी जैसे पहली बरसात के मीठे जल की बौछार हुई हो। उन्होंने तो सरस्वतीजी के साथ सबसे करीबी वात्सल्यपूर्ण और बिल्कुल सीधा संबंध स्थापित कर रखा था। खैर! गोष्ठी चल रही थी और वातावरण धीरे—धीरे वासंती मधुर होता जा रहा था। उनका गीत चल रहा था—

चंदा के इर्द—गिर्द मेघों के घेरे  
ऐसे में क्यों न कोई/मौसमी गुनाह हो।  
एक बार और जाल/फेंक रे मछेरे!

गोष्ठी बढ़ती रही। समारोह की सम्पन्नता के बाद चलते हुए मिश्रजी ने हमारे सफर का ख्याल रखते हुए पूछा—आप लोग कैसे जाएँगे? मेहमान की मेजबानी से अभिभूत मेरे पति ने कहा—हमारे पास गाड़ी है और हाथ जोड़कर हम दोनों ने प्रणाम किया। मिश्रजी भीमताल चले गये और हमने भी काशीपुर की राह ली।

यह पहली मुलाकात थी जो कई इन्द्रधनुषी रंग छोड़ गयी। उसी दिन बुद्धिनाथजी ने मनोज आर्य को अपनी पुस्तक 'शिखरिणी' भेंट की जिसे मैंने एक नजर देखा भर था। मनोज से मैंने पढ़ने के बाद 'शिखरिणी' देने को कहा, जिसे मनोज ने मान भी लिया और निभाया भी। कुछ समय बाद 'शिखरिणी' मेरे हाथों में थी।

एक बार जल्दी से पन्ने पलटने के बाद मैंने उसका प्राक्कथन 'अक्षरों के शांत नीरव द्वीप पर' पढ़ना शुरू किया। मेरी हैरानगी की सीमा न रही। नवगीतकार के नाम से प्रतिष्ठित साहित्यकार का इतना अच्छा गद्य शिल्प! चुंबकीय आकर्षण था उसमें। बार—बार पढ़ा मैंने—खुद को सरस्वती का सबसे प्रिय बालक बताना और पूरी उम्र की साधना को भी कमतर आँकना। उस संग्रह का हर गीत बहुत लय में था। उसे पढ़ते ही खुद—ब—खुद गाया जाने लगता था। एक बार मैं एक गीत गा रही थी। अचानक

देखा कि मेरी आठ साल की बेटी उस पर नृत्य कर रही है, उस समय वह कथक सीख रही थी। यह काव्य में रस की पूरिपूर्णता थी और सार्थकता भी।

उन्हीं दिनों मेरी माँ बीमार पड़ी। मैंने फोन पर उन्हें सुनाया—‘अपनी चिट्ठी बूढ़ी माँ मुझसे लिखवाती है...।’ सुनकर वे भावुक होकर बोली—‘ऐसा लगता है जैसे माताजी के बारे में लिखा हो’ और उस बहाव के बाद उन्होंने काफी स्वस्थ महसूस किया। गीत औषधि भी हो सकते हैं, मैंने पहली बार महसूस किया। एक बार मनोज आर्य काशीपुर आये और ‘शिखरिणी’ का जिक्र किया तो मैंने उनके सामने रख दी और वे उसे लेकर चले गये। बहुत पछतायी मैं...। अगर थोड़ा भी आभास होता कि वे उसे लेने आये हैं तो देती नहीं।

अब तक मुझे नवगीतकार शब्द का अर्थ बहुत सही नहीं मालूम था, लेकिन उनके गीतों में नव कल्पना, नव भाव, नवसंदर्भ देखकर अहसास हुआ कि जो सरस्वती में अपनी बूढ़ी माँ की कल्पना कर सकता है, जो अपनी जमीन तलाश कर अपना नया भवन तैयार कर सकता है, वह तो नवगीतकार होगा ही। छुट्टियों में घर जाना हुआ तो पिताजी के पुस्तकालय में सत्तर के दशक की बिहार से प्रकाशित एक पत्रिका ‘गूँज’ मिली जिसमें बुद्धिनाथजी के दो प्रेमगीत मिले। पढ़कर मन ने मान लिया कि उनके गीतों में नवपल्लव—सी नवता है जो उन्हें परंपरा से अलग खड़ा करती है। गीतों के साथ चित्रा देखकर लगा कि तब वे वास्तव में कालिदास प्रेरित कवि लगते थे। व्यवसाय ने धीरे-धीरे उन्हें व्यक्तित्व में अधिकारी के रूप में स्थापित कर दिया, किन्तु भीतर से वे वही शुद्ध साहित्यिक संस्कृति प्रेरित छंदबद्ध गीतों के रचयिता रहे।

शहरों में दूरी होने की वजह से मिलना नहीं हो पाता था। दूरभाष पर भी बात हो पाना भाग्य के भरोसे था। इसी बीच सितम्बर 2007 में मेरा कहानी संग्रह ‘एक दिन की उम्र’ छपा। इसका निर्णय और प्रकाशन मात्र दस दिन में हुआ था। मिश्रजी से प्रार्थना की उसके लिए समीक्षात्मक पत्र लिखने की, तो उन्होंने कहा, ‘पांडुलिपि भेज दो’। मैंने पांडुलिपि भेजी और इतनी जल्दी पत्र सहित पांडुलिपि वापस आ गयी कि समय के भीतर ही मेरा प्रकाशन कार्य पूरा हो गया। पत्र भी इतना सारगर्भित और वात्सल्यपूर्ण था कि बार-बार पढ़ने का मन होता। काफी समय खाली निकल गया इसके बाद। मिश्रजी बहुत व्यस्त हो गये। फोन पर भी बात नहीं हो पाती। उनके विदेशों के दौरे बढ़ गये थे।

काफी समय बाद सौभाग्य से उनसे फोन पर बात हो गयी, पता चला वे काशीपुर होते हुए पंतनगर जा रहे हैं। मैंने घर आने के लिए प्रार्थना—पत्र दिया जो, अगले दिन के लिए स्वीकृत हो गया। अगले दिन दोहरे सौभाग्य का विषय रहा। बुद्धिनाथजी के साथ माहेश्वर तिवारीजी का भी सत्संग मिला। फिर जो बिना एक बार भी उठे साहित्य चर्चा चली तो दो घंटे कहाँ बीते पता भी नहीं चला। ऐसा ज्ञान जो आज की बेतरह महंगी शिक्षा के दौर में किसी यूनिवर्सिटी की कक्षा में भी न मिलता, वहाँ मैंने पाया।

कुछ समय बाद पता चला कि मिश्रजी ने अपने सभी पारिवारिक दायित्वों को पूरा करते हुए 28 जून 2009 को अपनी सबसे छोटी बेटी शुभा की शादी खुशी-खुशी सम्पन्न कर दी। मेरे मन में तुरंत आया—‘रस्सी पर चलने जैसा ही जीवन! तेरा अरे संतुलन!’ व्यवसाय, साहित्य—लेखन, मंच—परिवार आदि की सारी जिम्मेदारियाँ इतनी व्यस्तताओं के बावजूद सधी हुईं।

(नये पुराने के अंक—बुद्धिनाथ मिश्र की रचनाधर्मिता से साभार)